सामान्य हिन्दी-विरोध का सकारात्मक पक्ष : कुछ नीतिगत सुझाव जो एक उत्तम भविष्य के इङ्गितक का कार्य कर सकें

सृजन साधुख़ाँ

मैं इसमें धन्यवाद-ज्ञापन एक दक्षिण भारतीय क़लम-मित्र को करना चाहूँगा जिनके साथ परस्पर अनेकों चर्चा करते हुए उत्तर और दक्षिण की भाषाओं में पारस्परिक सम्बन्धों, समसामयिक अन्तर्देशीय एवं विदेशी प्रभावों एवं क्षेत्रीय विचारधारा पर जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला।

हिन्दी भाषा पूरे उपमहाद्वीप में किसी न किसी कारण से चर्चा में रहती ही है, चाहे वह सकारात्मक हो, या, वही नकारात्मक। परन्तु उसकी चर्चा है, और किन्हीं कारणों से तो चलती ही रहेगी।

चलिए नकारात्मक पक्ष पे ही आते हैं, हिन्दी के विरोध का यह पक्ष निरा राजनैतिक है। उत्तरद्वेश की भावना इसमें कण कण में समाहित है। विधर्मी प्रकृति भी एक कारण है, 'विधर्मी' का सन्दर्भ धार्मिक तथा ऐतिहासिक है। ब्राह्मणद्वेष भी एक कारण है।

हिन्दी का विरोध जायज़ है कि नहीं यह तो हम कुछ ही देर में इसकी चर्चा करेंगे। हमारे लिए जो मायने रखता है वह यह है कि विरोध का प्रकार कैसा है, विरोध का स्वरूप कैसा है और विरोध में निहित विचारधारा कैसी है। और जहाँ तक भाषीय राजनीतिकरण की बात है इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह नाजायज़ हैं। आत्मदाह वाली दीवानगी की मानसिकता कायरता का परिचायक है न कि बलिदान का (कृपया इसे जौहर या सती से जोड़कर न देखा जाए तो उचित होगा, हत्ता कि आज के दौर में जौहर या सती की महत्ता घट गई है)। मैं इसके बारे में कुछ पहलू एक दूसरे लेख में तार्किक रूप से करूँगा।

(मैं यहाँ ‘हिन्दी’ में हिन्दी और उर्दू दोनों को सम्मिलित कर रहा हूँ ताकि चीज़ों में स्पष्टता आए, सन्दर्भ-भेद होने पर अलग से ‘मानक हिन्दी’ और ‘उर्दू’ पदों का भी प्रयोग किया जाएगा।) हिन्दी भाषा निस्सन्देह एक उपमहाद्वीप-व्यापी भाषा है जिसका प्रसार राजकाज, मनोरञ्जन, व्यापर आदि क्षेत्रों में अधिक से अधिक एक सम्पर्क भाषा के रूप में होता चला आया है। देश-विदेशों में इसकी लोकप्रियता है और हमारे दक्षिणवासी सामान्यजन भाई-बन्धुओं में भी इसके प्रति सहिष्णुता साधारणतः दिखाई देती है।

जहाँ तक व्यावहारिक प्रयोग की बात है, ऐसा नहीं कि हर कोई द्विभाषी है, परन्तु यह भी सत्य है कि प्रयास से कहीं न कहीं अन्ततः (न बोल पाने पर भी) हिन्दी समझने वाले मिल जाएँगे। एक भाषा तब सम्पर्क भाषा का आकार लेने लगती है जब उसे लोग, टूटे-फूटे स्वरूप में ही सही, यथासम्भव अन्यभाषी समाज/समाजों तक अपनी बात सम्प्रेषित करने में लगाती है। और इसे किञ्चित हद तक या बुनियादी स्वरूप में विभिन्न अञ्चल के लोगों में सुनी, बोली, समझी जाती है। इसका आशय यह समझना भूल है कि सम्पर्क भाषा जानने वाले अकादमिक स्तर पर पढ़-लिख सकने में सक्षम हैं। इसके कुछ कारक हैं, उच्चारण भेद, वर्तनी भेद, व्याकरण भेद इत्यादि।

कुछ कट्टर क्षेत्रीय(तावादी) लोग इन कारणों से चाहते हैं कि हिन्दी न ‘थोपी’ जाए, कुछ लोग चाहते हैं कि ‘हिन्दी’ को ही समाप्त किया जाए, धीरे धीरे लोग और अधिक हिन्दी के प्रति क्षुब्ध होते जा रहे हैं। ऐसे में एक भूल अवधारणा का जन्म हो रहा है कि क्योंकि हिन्दी एक सम्पर्क भाषा है और इस वैचित्र्यमय भारत में एक विशिष्ट आबादी मात्र की भाषा हिन्दी है अतः इसे भाषीय साम्राज्य का नाम दिया जा रहा है, जबकि इसके विपरीत हमारे अनुभव उत्तर में काफ़ी अलग हैं। माना कि कुछ क्षेत्रों में आधिकारिक भाषा के तौर पर हिन्दी को गृहित किया जा चुका है, परन्तु ‘हिन्दी-पट्टी’ के कुछ हिस्से अपने आप में वैचित्र्यमय हैं, यही नहीं, क्षेत्रीय स्तरों पर अलग अलग भाषाओं का सम्मान दिनों दिन बढ़ाया जा रहा है, कुछ

‘हिन्दी प्रदेशों’ में इन्हें स्कूलों में पढ़ाया जा रहा है और कहीं कहीं तो इन्हें राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

तेलङ्गाणा दक्षिण का एकमात्र पूर्ण राज्य है जहाँ एक से अधिक सरकारी मान्यता प्राप्त राजभाषाएँ हैं। इसके विपरीत ‘हिन्दी प्रदेशों’ में छत्तीसगढ़ में ‘हिन्दी’ और ‘छत्तीसगढ़ी’ राजभाषाएँ हैं। झारखण्ड ने १७ राजभाषाओं को आधिकारिक घोषित किया है, ये न ही केवल हिन्दी प्रदेशों में, बल्कि समस्त भारतवर्ष में सर्वाधिक है। ‘अहिन्दी प्रदेशों’ में केवल पश्चिम बङ्गाल ही ऐसा राज्य है जिसने अन्यान्य भाषाओं को क्षेत्र के आधार पर राजभाषा भी बढ़ाया और साथ ही राजभाषाओं कि सङ्ख्या में बढ़ोतरी भी की। यह भी बता दें कि मानक हिन्दी पश्चिमबङ्गाल में भी एक राजभाषा है। यही नहीं, पश्चिमवङ्ग भारतवर्ष में सर्वाधिक ग़ैर-स्थानीय क्षेत्रीय भाषाओं को मान्यता दिलाने वाला राज्य है। भाईसाहब हालात ऐसे हैं कि लोग मातृभाषा को छोड़ कर हिन्दी को अधिक महत्त्व दे रहे हैं, कहीं कहीं तो हिन्दी भी उपेक्षित है। भाषाओं में छोटा बड़ा किया जा रहा है। भाषा मानो स्टेटस का तग़मा बन गया है!

रही बात कार्य की भाषा की तो प्रश्न यह है कि सरकारें, विशेष रूप से केन्द्र सरकार इस विशालकाय जनता से अपनापन का नाता कैसे जोड़ें। एक पुराना उपाय यह है कि सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा को राष्ट्रीय स्तर पर एकमेव स्थानीय राजभाषा घोषित किया जाए। यों तो भारत में राजभाषा (फ़लसफ़ी चर्चाओं अथवा राष्ट्रवादी सन्दर्भ में राष्ट्रभाषा) की समझ विदेशों से प्राप्त हुई, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में राजभाषा (फ़लसफ़ी चर्चाओं अथवा राष्ट्रवादी सन्दर्भ में ‘राष्ट्रभाषा’) की धारणा एक सम्पर्क भाषा के तौर पर हुई थी न कि कार्य की एकमेव राजभाषा के तौर पर। इस धारणा में भारत, इथियोपिया, पाकिस्तान, आधुनिक रूसी महासङ्घ और इण्डोनेशिया समपृष्ठीय हैं। लेकिन देखने को यह भी मिलता है कि एक तो कॉङ्ग्रेस राजभाषा के मुद्दे पर गान्धी के सुझावों को त्यागती है तो दूसरी ओर विभाजन-जन्य क्रोध-ज्वाला से उत्पन्न हिन्दी साम्राज्यवाद अपने चरम पर आ जाती है। अब अच्छा यह है

कि यहाँ के जनमानस में 'वैचित्र्य में सौहार्द्रय और एकता' के मूल्य पाए जाते हैं। पर अन्य देश इस मामले में कुछ पीछे रहते दिखाई देते हैं। अन्य देश भारत से अधिक स्थिर हो सकते हैं, पर भारत जितना भी सहिष्णु और सौभाग्यशाली नहीं। इण्डोनेशिया का हाल भारत से बढ़कर हो सकता है, पर क्षेत्रीय भाषाओं को मान्यता दिलाने में भारत से पीछे है। रूस में सोवियत दौर में रूसी का बोलबाला था, अब थोड़ा कम माना जा सकता है। आज के रूस में हर भाषा को क्षेत्रीय स्तर पर मान्यता मिली हुई है, यद्यपि आज भी रूसी का दबदबा जारी है। पर नए युग में परिवर्तन की मशालें पकड़े इथियोपिया और नेपाल भाषाधिकार में अग्रणी हैं। जबकि मातृभाषाधिकार-विजय का ढिण्ढोरा पीटने वाला पूर्ववङ्ग स्वयं इसी में पिछड़ा है।

भारत की राजभाषा नीति एक पुराने दौर के ढाँचे पर आधारित है। चलिए नए नवेले तन्त्रों वाले देशों ने क्या-क्या नीतियाँ अपनाई इसे जान लेते हैं। राजतन्त्र-पश्चात् नेपाल में राजभाषा के मामले में कुछ बड़े गम्भीर क़दम उठाए हैं, यथा नेपाल की सभी भाषाओं को राष्ट्रभाषा घोषित करना और क्षेत्रीय स्तर पर राज-काज के कार्यों में अन्य भाषाओं के प्रयोग और पठन-पाठन की अनुमति प्रदान करना। हालाँकि राष्ट्रीय स्तर पर राजभाषा के रूप में नेपाली भाषा को एक प्रकार से प्राथमिकता मिली हुई है। इथियोपिया में १९९१ में साम्यवादी शासन के पतन के पश्चात् सरकार ने नेपाल की ही तरह अम्हरी को मुख्य राजभाषा घोषित कर बाक़ी भाषाओं को समान संवैधानिक मान्यता दिलाई। साथ ही क्षेत्रीय स्तर पर अन्य भाषाओं को राजभाषा का दर्जा दिलाने का काम किया। हाल ही में (२०२०) वहाँ कि सरकार ने यह ऐलान किया है कि ऑरॉमो, अफार, सोमाली और तिग्रिञा को भी राजभाषा के तौर पर भी स्वीकृति दिलाई गई है। यानी अब कुल पाँच भाषाएँ। इथियोपिया के वर्तमान प्रधानमन्त्री आबी अहमद अली ने कहा:

अम्हारी की एक बड़ी भूमिका इसमें रही है कि यह सालों से इथियोपियाई समाज में हमारी सम्पर्क भाषा रही है और विभिन्न लोगों के बीच सम्प्रेषण सुगम करने में मदद करती आई है। परन्तु ऐसे समाज को निर्माण करने हेतु जो राजनैतिक और आर्थिक रूप से समन्वित हो,

नई भाषाओं को सम्मिलित करना आवश्यक है। ये नई भाषाएँ देश को जोड़ने और इथियोपियाई लोगों के दरमियान सम्पर्कों को उन्नत करने में सहायक होंगी।

कहा यह जाता है कि इथियोपिया में एकता के नाम पर भाषा को थोपने का उपक्रम चलता रहा है। यह बात सही है कि अम्हारी भाषा सबसे लोकप्रिय भाषा है परन्तु सबसे अधिक बोली जाने वाली मातृभाषा ऑरॉमो भाषा को काफ़ी समय से उपेक्षित रखा गया था।

नेपाल और इथियोपिया के उदाहरण काफ़ी लुभावने लगे। मैं कुछ कारणों से सिंहपुर देश का ब्यौरा अभी नहीं देना चाह रहा हूँ, उसकी बात कभी और की जा सकती है।

भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए जितना आवश्यक एक सम्पर्क भाषा है उससे अधिक आवश्यक मातृभाषा में सेवा प्राप्त करने का अधिकार है। हर प्रसङ्ग, हर सन्दर्भ एवं हर पृष्ठभूमि में इस बात की सत्यता स्थापित है। भारत के सन्दर्भ में अगर कुछ किया जा सकता है तो मेरे कुछ सुझाव इस सन्दर्भ में काम आ सकते हैं। उन्हीं को निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट करने की चेष्टा करूँगा।

१) राष्ट्रभाषा-द्वन्द्व के निरसन हेतु सभी भाषाओं को एक साथ राष्ट्रभाषा घोषित करना, ताकि राष्ट्रभाषा है या नहीं इस झगड़े का समापन तुरन्त हो जाए।
२) भाषाओं के चार वर्गीकरण किए जाएँ।
३) इन चार वर्गीकरणों में प्रथम वर्ग स्थानीय सम्पर्क भाषाओं का रहेगा। इसमें हिन्दी ही नहीं, नागपुरी, असमिया, ओड़िया, छत्तीसगढ़ी, पञ्चपरगनिया, नेपाली, बङ्गाली आदि बहुसांस्कृतिक सम्पर्क भाषाओं को सम्मिलित किया जाएगा। जिन इलाकों में अपनी ही एक सम्पर्क भाषा हो वहाँ हिन्दी का दबाव घटाया जाए, दूसरी ओर जहाँ कोई सम्पर्क भाषा नहीं बन पाई है या कोई नई सम्पर्क भाषा पाने को आग्रही है वहाँ हिन्दी अथवा किसी भी भाषा के सम्पर्क भाषा के रूप में चयन की सुविधा उपलब्ध हो।
४) दूसरा वर्ग सभी क्लासिकी भाषाओं का रहेगा। संस्कृत, तमिऴ्, तेलुगु, मलयाळम्, कन्नड़, ओड़िया वर्तमान में क्लासिकी हैं। तो इन्हें इस वर्ग में रखा जाएगा।

५) तीसरा उनका जिन्हें अभी तक सम्पर्क भाषा का दर्जा हासिल न हुआ हो। ब्रज, अवधी, कश्मीरी, गुजरती, भोजपुरी, छिलटी, सौराष्ट्री, कोंकणी, सरगुजिया, तुळु आदि भाषाएँ इसमें सम्मिलित होंगी।

६) चौथा वर्ग अलग से आदिवासी, जनजाति, वर्गविशेष की भाषाओं की हो सकती है। इनमें सन्ताड़ी, कुड़ुख़, त्रिपुरी, राभा, बड़ो, कोच, मिज़ो, चकमा, मैतै, ईरुळ, बड़ग, तोड़ आदि भाषाओं को सम्मिलित किया जाएगा।

७) सभी केन्द्र सरकार के कामकाज और सुयोग-सुविधाएँ सभी भाषाओं में सम्भव हो पाएँगे। इससे लातादाद नौकरियाँ उत्पन्न कराई जा सकती हैं। विभिन्न विशिष्ट पद जैसे अनुवादक, मुद्रक, भाषाज्ञ आदि हो सकते हैं।

८) हर प्रदेश में हर स्थानीय भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया जाए। इससे और भी बेहतर यही होगा यदि राज्यों के नाम भाषा पर आधारित न होकर सङ्ख्या या किसी और चीज़ पर आधारित हों।

९) कुछ दक्षिण के लोग यह ताना मारते हैं कि हमने 'अगर हिन्दी को गृहित कर लिया तो क्या 'हिन्दी' प्रदेशों में हमारी भाषाओं को गृहित करेंगे भला?' क्यूँ न इसी को अवसर में बदल दें? फिर राजस्थान में हम मलयाळम्, बङ्गाल में तेलुगु और महाराष्ट्र में तमिऴ् में कार्य कराएँ, इससे और नौकरियों का सृजन होगा, अङ्ग्रेज़ी से अनायास बोझ हट जाएगा।

१०) नेपाल की तरह बहुभाषिक शिक्षण प्रणाली भारत में अपनाई जाए। सुविधा हेतु उत्तर प्रदेश की भाँति एक क्यू॰आर॰ कोड सहायित प्रणाली कारगर साबित हो सकती है। नवभारत टाइम्स के मुताबिक़ – *"अधिकारियों ने बताया कि उत्तर प्रदेश में शिक्षक एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पोस्ट होते हैं। जैसे मेरठ के शिक्षक को गोरखपुर में तैनाती दे दी जाती है। ऐसे में उसे पढ़ाने में कोई समस्या न हो इसलिए हिन्दी पाठ्यपुस्तक की सामग्री को ही स्थानीय भाषा में किया गया है। किताबों का कॉन्टेट वही रखा गया है।*

शिक्षण में मदद करने के लिए किताबों में एक विशेष सुविधा भी है। जो शिक्षक स्थानीय बोली के साथ फ्रेंडली नहीं हैं वे प्रत्येक पाठ के लिए एक क्यू॰आर॰ कोड स्कैन कर सकते हैं। कोड स्कैन करते ही किताब की पाठ्य सामग्री का ऑडियो चलने लगेगा। जिससे बच्चे उसे आसानी से सुन और समझ सकते हैं।"

एक और पहलू पर मैं कहना चाह रहा था। मैं यह तो नहीं कहता कि संस्कृत के शब्दों को पुस्तकों में न प्रयोग किया जाए। मैं संस्कृतिकरण के लिए साधुवाद जताता हूँ। परन्तु कार्य की भाषा के रूप में अङ्ग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं में इतना अन्तर है कि अङ्ग्रेज़ी में तब भी सामान्य शब्द-चयन की एक निर्धारित सीमा है, पर हमारी भाषाओं के कार्यालयीन स्वरूप इतने भयावह हैं कि इसकी तुलना अगर शशि तरूर की अङ्ग्रेज़ी से न की गई तो यह अनुचित ही नहीं वरन् अन्याय भी होगा। कटु लग सकता है, पर सत्य यही है की भाषा की तरूरता या तरूरियत भाषा के प्रचार प्रसार में बाधा पहुँचा रही है। इस बात को उपेक्षित करना पाप के समतुल्य है। मैंने एक पूर्ववङ्गीय बङ्गाली प्रोग्राम में एक चीज़ देखी, उसमें बताया जा रहा था कि अङ्कीय तौर से फ़ॉर्म कैसे भरे जाते हैं। लिखा था 'संरक्षण करके अग्रसर हों' अब भैया जिस बात को 'सहेज कर आगे बढ़ें' ऐसे भी बताया जा सकता था उसे इतनी पेचीदी बनाने का क्या प्रयोजन?

अतः मेरा ख़याल यही है कि भाषीय स्वतन्त्रता को एक स्तर ऊँचा रखने से कोई बुराई नहीं होगी। वह अलग बात है कि भाषाओं को उपेक्षित करने वाले और भाषीय बहस और झगड़े कराने वाले घटने नहीं वाले, पर इनकी परवाह न ही की जाए तो इस दुनिया का भला है।

इति